International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

आदिवासी राजनीति और औद्योगिक विस्थापन: झारखण्ड में विकास न्याय की पुनर्व्याख्या

Dr. PREM PRAKASH

HoD, Department of Political science and Dean, Faculty of Social Science and Humanities, Radha Govind University, Ramgarh

सारांश

झारखण्ड के औद्योगिक विकास की प्रक्रिया आदिवासी जीवन और भू-संस्कृति के लिए सबसे बड़ी चुनौती बनकर उभरी है। खनिज-आधारित उद्योगों और विकास परियोजनाओं ने जहाँ राज्य को निवेश और राजस्व प्रदान किया, वहीं लाखों आदिवासियों को विस्थापन, आजीविका संकट और सामाजिक विखंडन का सामना करना पड़ा। यह अध्ययन इस द्वंद्व को समझते हुए विश्लेषण करता है कि किस प्रकार झारखण्ड की आदिवासी राजनीति ने औद्योगिक विस्थापन के प्रश्न को केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और न्यायसंगत अधिकारों के संघर्ष के रूप में पुनर्परिभाषित किया। "जल, जंगल, जमीन" की अवधारणा यहाँ विकास के एक वैकल्पिक प्रतिमान के रूप में उभरती है, जो संसाधन-आधारित पूंजीवादी मॉडल के विरुद्ध समुदाय-केंद्रित न्याय की मांग करती है। अध्ययन का निष्कर्ष है कि झारखण्ड में विकास तभी न्यायपूर्ण और टिकाऊ हो सकता है, जब नीति-निर्माण में आदिवासी सहभागिता, सांस्कृतिक स्वायत्तता और पर्यावरणीय संवेदनशीलता को समान महत्व दिया जाए।

बीजक शब्द- आदिवासी राजनीति, औद्योगिक विस्थापन, विकास न्याय, जल-जंगल-जमीन, पर्यावरणीय न्याय।

प्रस्तावना

झारखण्ड का गठन वर्ष 2000 में भारतीय संघ के 28वें राज्य के रूप में हुआ, जो एक दीर्घकालिक सामाजिक-राजनीतिक संघर्ष का परिणाम था। इस संघर्ष की जड़ें उपनिवेशकालीन शोषण, भूमि-अधिग्रहण तथा संसाधनों पर बाहरी नियंत्रण की ऐतिहासिक प्रक्रियाओं में निहित थीं। "जल, जंगल, जमीन" का नारा केवल एक आंदोलनकारी नारा नहीं था, बल्कि यह झारखण्ड की पहचान, संस्कृति और राजनीतिक आत्मनिर्णय की सामूहिक अभिव्यक्ति थी (Kujur, 2003)। राज्य के गठन का मूल उद्देश्य यह था कि खनिज-संपन्न परंतु सामाजिक रूप से उपेक्षित इस क्षेत्र को स्थानीय विकास, रोजगार, और सामाजिक न्याय की दिशा में अग्रसर किया जा सके (Xaxa, 2008)।

किन्तु पिछले दो दशकों में झारखण्ड का अनुभव बताता है कि औद्योगिकरण की प्रक्रिया ने जितना आर्थिक अवसर प्रदान किया, उससे कहीं अधिक सामाजिक असमानता, विस्थापन और सांस्कृतिक विघटन को जन्म दिया। 2000 से 2020 के बीच झारखण्ड में खनन, इस्पात, ऊर्जा और बुनियादी ढांचा क्षेत्र में लगभग 150 से अधिक औद्योगिक परियोजनाएँ प्रस्तावित या लागू की गईं। इन परियोजनाओं के कारण भूमि अधिग्रहण और विस्थापन की गंभीर समस्या बनी रही। नवीनतम अनुमानों के अनुसार, 2022 तक राज्य में कोयला, लौह अयस्क और अन्य खनन परियोजनाओं के चलते लगभग 2 लाख से अधिक लोग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विस्थापित हुए हैं, जिनमें करीब 65–70 प्रतिशत लोग अनुसूचित जनजातियों से आते हैं (People's Democracy, 2025 & Sabrang India, 2023)। केवल कोयला खनन क्षेत्र में ही लगभग 13,700 हेक्टेयर भूमि का अधिग्रहण किया गया और 1,000 से अधिक परिवार विस्थापित हुए (Sabrang India, 2023)। इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि झारखण्ड में औद्योगिकरण का लाभ सीमित वर्गों तक पहुँचा, जबकि सामाजिक-आर्थिक लागत अपेक्षाकृत कमजोर समुदायों विशेषकर आदिवासियों ने वहन की। औद्योगिक विकास के नाम पर खनन और बड़े बाँधों की परियोजनाओं ने स्थानीय आजीविका प्रणालियों को गहराई से प्रभावित किया, जबकि भूमि अधिग्रहण और पुनर्वास नीतियाँ अधिकतर कॉर्पोरेट हितों को प्राथमिकता देती रहीं (Fernandes, 2006)।

झारखण्ड की राजनीतिक अर्थव्यवस्था में औद्योगिकरण का प्रश्न केवल आर्थिक नीति का नहीं, बल्कि सत्ता, प्रतिनिधित्व और अधिकार का प्रश्न बन गया है। राज्य की औद्योगिक नीतियाँ चाहे वह 2001 की औद्योगिक नीति हो या 2016 और 2021 की निवेश-प्रोत्साहन नीतियाँ मुख्यतः संसाधन दोहन और निवेश आकर्षण पर केंद्रित रही हैं (Government of Jharkhand, 2016)। लेकिन इन नीतियों में स्थानीय समुदायों की भागीदारी और पर्यावरणीय संतुलन की उपेक्षा ने "विकास" के अर्थ को संकुचित कर दिया है। यह विरोधाभास झारखण्ड की राजनीति के केंद्र में है, जहाँ एक ओर राज्य सरकारें निवेश और रोजगार के लिए उद्योगों को प्रोत्साहित करती हैं, *वहीं दूसरी ओर* आदिवासी आंदोलन विकास की सामाजिक कीमतों को उजागर करते हैं।

इस सन्दर्भ में "विकास न्याय" (Development Justice) की अवधारणा अत्यंत प्रासंगिक बन जाती है। यह अवधारणा पारंपरिक आर्थिक वृद्धि मॉडल से भिन्न होकर समान वितरण, सामाजिक समावेशन, पर्यावरणीय संतुलन और जवाबदेही पर बल देती है (DAWN, 2013)। झारखण्ड के अनुभव में यह न्याय केवल आर्थिक पुनर्वितरण का प्रश्न नहीं, बल्कि सांस्कृतिक स्वायत्तता और राजनीतिक सहभागिता से भी जुड़ा है। Development as Freedom में अमर्त्य सेन (1999) ने यह रेखांकित किया कि वास्तविक विकास तभी संभव है जब लोग अपने सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विकल्पों पर नियंत्रण रख सकें। झारखण्ड की स्थिति यह दिखाती है कि औद्योगिक विकास की दिशा में यह नियंत्रण धीरे-धीरे स्थानीय समुदायों के हाथों से छिनता गया है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमिझारखण्ड :, औद्योगिकरण और आदिवासी आंदोलन

झारखण्ड का औद्योगिक इतिहास भारत के औपनिवेशिक आर्थिक ढाँचे से गहराई से जुड़ा रहा है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में जब ब्रिटिश शासन ने खनिज-समृद्ध छोटानागपुर पठार को "रॉ मटेरियल जोन" के रूप में देखा, तभी से यहाँ की भूमि, जल और वन संपदा का व्यवस्थित दोहन शुरू हुआ। ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति का उद्देश्य स्थानीय विकास नहीं, बल्कि संसाधनों का निर्यातोन्मुख दोहन था। 1850 के दशक में रेलवे निर्माण और कोयला खनन की शुरुआत ने संथाल परगना और कोल्हान क्षेत्रों की सामाजिक संरचना को झकझोर दिया। रेल परियोजनाओं और कोयला खानों के लिए बड़े पैमाने पर भूमि अधिग्रहण किया गया, जिससे पारंपरिक सामुदायिक भूमि स्वामित्व प्रणाली (खुटकटी और भूइयां प्रथा) टूटने लगी (O'Malley, 1910)।

ब्रिटिश काल में खनिज संसाधनों पर आधारित उद्योगों की नींव रखी गई, विशेष रूप से झरिया और धनबाद में कोयला खनन, सिंहभूम में लौह अयस्क और चूना पत्थर का दोहन, तथा जमशेदपुर में इस्पात उद्योग की स्थापना। 1907 में टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी (अब टाटा स्टील) की स्थापना भारत में आधुनिक औद्योगिकरण का प्रतीक बनी, परंतु इसके पीछे जो भूमि अधिग्रहण हुआ, उसने हज़ारों आदिवासी परिवारों को विस्थापित किया (Mukherjee, 2009)। टाटा नगर के निर्माण के दौरान लगभग 10,000 से अधिक ग्रामीणों को उनकी पुश्तैनी भूमि से हटाया गया था, जबकि मुआवज़ा और पुनर्वास की कोई स्पष्ट नीति मौजूद नहीं थी (Roy, 2014)।

औद्योगिकरण का यह पैटर्न "खनिज आधारित विकास" (mineral-based growth) पर टिका रहा, जहाँ संसाधन तो स्थानीय थे, पर पूँजी और प्रबंधन बाहरी नियंत्रण में रहे। 1950–70 के दशकों में सार्वजनिक क्षेत्र के बड़े संयंत्रों की स्थापना जैसे बोकारो स्टील प्लांट, हजारीबाग कोयला खदानें और राँची-हटिया औद्योगिक बेल्ट को राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से आवश्यक बताया गया। किंतु इन परियोजनाओं ने स्थानीय समुदायों की भूमि, जंगल और जल पर अधिकारों को और अधिक कमजोर किया (Fernandes & Paranjpye, 1997)। बोकारो स्टील परियोजना (1964) के कारण अकेले चास और पेटरवार क्षेत्र से लगभग 70,000 लोग विस्थापित हुए, जिनमें बहुमत संथाल, उरांव और मुंडा समुदायों का था (Munda, 2000)।

औद्योगिकरण की यह प्रक्रिया केवल भौतिक विस्थापन तक सीमित नहीं थी, इसने आदिवासी जीवन के सांस्कृतिक ताने-बाने को भी प्रभावित किया। सामुदायिक भूमि-स्वामित्व और साझा संसाधनों पर आधारित अर्थव्यवस्था धीरे-धीरे नगदी अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हुई। परंपरागत ग्रामसभा, मांझी-पहाड़िया और परहा पंचायत जैसी स्वशासन संस्थाओं की भूमिका कमजोर होती गई। इस परिवर्तन को कई विद्वानों ने "सांस्कृतिक विस्थापन" (cultural

displacement) की संज्ञा दी है, जिसमें पहचान, भाषा और सामाजिक आत्मनिर्णय के अधिकारों का क्षरण हुआ (Shah, 2010)।

इस औद्योगिक परिवर्तन के विरुद्ध प्रतिरोध की परंपरा झारखण्ड के सामाजिक इतिहास में गहराई से जमी हुई है। संथाल विद्रोह (1855-56) और बिरसा आंदोलन (1895–1900) ने औपनिवेशिक भूमि नीतियों के खिलाफ पहली बड़ी चुनौती पेश की थी। बिरसा मुंडा के नेतृत्व में "उलगुलान" केवल धार्मिक या सामाजिक आंदोलन नहीं था, बल्कि यह "जल-जंगल-जमीन" के स्वामित्व के लिए राजनीतिक संघर्ष था (Guha, 1999)। इन आंदोलनों की विरासत बाद में आधुनिक झारखण्ड आंदोलन की वैचारिक प्रेरणा बनी।

स्वतंत्रता के बाद, झारखण्ड क्षेत्र की अर्थव्यवस्था को "राष्ट्रीय हित" के नाम पर खनिज और ऊर्जा आपूर्ति केंद्र के रूप में परिभाषित किया गया। केंद्र सरकार और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बीच हुए खनन समझौते, जैसे कि कोल इंडिया, एनटीपीसी और सीसीएल के अनुबंध, स्थानीय समुदायों की भागीदारी से लगभग बाहर रहे (Sengupta, 2007)। इस दौर में विकास का अर्थ बड़े बाँध, खदानें और कारखाने बन गया, परंतु यह विकास मुख्यतः "संसाधन-आधारित निर्यात अर्थव्यवस्था" का रूप लेता गया।

1970 के दशक से झारखण्ड आंदोलन ने एक नई दिशा पकड़ी। झारखण्ड मुक्ति मोर्चा (JMM) और ऑल झारखण्ड स्टूडेंट्स यूनियन (AJSU) जैसे संगठनों ने "संसाधनों पर स्थानीय स्वामित्व" और "राजनैतिक स्वायत्तता" को अपने एजेंडे के केंद्र में रखा। यह आंदोलन केवल राज्य निर्माण की मांग नहीं था, बल्कि यह "विकास के नियंत्रण" की मांग थी यानी यह सवाल कि खनिजों, वन संपदा और भूमि से होने वाले लाभ का हिस्सा किसे मिलना चाहिए (Deogharia, 2011)। 1980-90 के दशक में यह आंदोलन एक व्यापक राजनीतिक स्वरूप ग्रहण कर गया, जिसमें शिक्षा, रोजगार और पर्यावरणीय न्याय के प्रश्न जुड़े।

आदिवासी राजनीति का यह विकासक्रम स्पष्ट करता है कि झारखण्ड में औद्योगिकरण कभी भी केवल आर्थिक प्रक्रिया नहीं रही, यह हमेशा सत्ता, पहचान और संसाधनों के पुनर्वितरण का प्रश्न रहा है। राज्य गठन (2000) इस ऐतिहासिक संघर्ष की परिणति अवश्य था, परंतु उस संघर्ष का मूल उद्देश्य स्थानीय स्वामित्व और विकास न्याय आज भी औद्योगिक विस्थापन की बहस के केंद्र में है।

औद्योगिक विस्थापन का राजनीतिक अर्थशास्त्र

झारखण्ड भारत का खनिज-समृद्ध राज्य है, जहाँ देश के कुल खनिज भंडार का लगभग 40 प्रतिशत हिस्सा मौजूद है, जिसमें प्रमुख रूप से कोयला, लौह अयस्क, तांबा, बॉक्साइट, अभ्रक और यूरेनियम शामिल हैं (Ministry of

Mines, 2023)। इसके बावजूद, झारखण्ड की औद्योगिक संरचना विडंबनापूर्ण रूप से पिछड़ी हुई है। यहाँ की आर्थिक वृद्धि मुख्यतः खनिज-आधारित निष्कर्षण (extractive economy) पर निर्भर है, न कि मूल्यवर्धन उद्योगों पर। यह विरोधाभास झारखण्ड के "संसाधन अभिशाप" (resource curse) की ओर संकेत करता है अर्थात् संसाधन संपन्नता के बावजूद विकास असमान और असंतुलित बना हुआ है (Auty, 1993)।

इस असमानता की जड़ भूमि अधिग्रहण और पुनर्वास की नीतियों में छिपी है। भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894, औपनिवेशिक काल से ही "सार्वजनिक उद्देश्य" की व्यापक परिभाषा के तहत राज्य को भूमि अधिग्रहण की असीमित शक्ति देता था। स्वतंत्रता के बाद भी यह ढाँचा लगभग अपरिवर्तित रहा, जिससे स्थानीय समुदायों, विशेषकर आदिवासियों, को विकास परियोजनाओं के नाम पर विस्थापित किया जाता रहा (Fernandes, 2007)। यद्यपि नया भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्स्थापन अधिनियम, 2013 (LARR Act) ने सामाजिक प्रभाव आकलन (SIA) और ग्रामसभा की सहमति को कानूनी मान्यता दी, परंतु व्यवहार में इन प्रावधानों को कई परियोजनाओं में दरकिनार किया गया है। उदाहरणस्वरूप, 2016-2021 के बीच 25 से अधिक औद्योगिक और खनन परियोजनाओं में ग्रामसभा की पूर्ण सहमति प्राप्त नहीं की गई थी (Down to Earth, 2021)।

यह स्थिति PESA अधिनियम (1996) की आत्मा के प्रतिकूल है, जिसने अनुसूचित क्षेत्रों में ग्रामसभा को भूमि, जल और वन के नियंत्रण का संवैधानिक अधिकार दिया था। झारखण्ड में PESA की वास्तविक क्रियान्विति सीमित रही है, क्योंकि राज्य सरकारों ने औद्योगिक निवेश को प्राथमिकता देते हुए स्थानीय शासन संरचनाओं को कमजोर किया (Bandi, 2019)। यही राजनीतिक विरोधाभास झारखण्ड के औद्योगिकरण की सबसे बड़ी आलोचना का कारण बना, जहाँ एक ओर विकास की भाषा में निवेश और रोजगार की बात की जाती है, वहीं दूसरी ओर लोकतांत्रिक सहमति और पर्यावरणीय न्याय को लगातार हाशिये पर रखा जाता है।

राज्य की औद्योगिक नीतियों की समीक्षा इस प्रवृत्ति को और स्पष्ट करती है। झारखण्ड औद्योगिक नीति 2001, राज्य गठन के तुरंत बाद निवेश आकर्षित करने के उद्देश्य से तैयार की गई थी, जिसमें कर छूट, भूमि बैंकिंग और खनन लाइसेंस को सुगम बनाने पर बल दिया गया। लेकिन इस नीति में स्थानीय समुदायों की भागीदारी या सामाजिक प्रभाव आकलन के लिए कोई ठोस प्रावधान नहीं थे (Jharkhand Industry Dept., 2001)। इसके बाद 2016 और 2021 की औद्योगिक नीतियों ने "Ease of Doing Business" के अनुरूप प्रक्रियागत सरलता पर ध्यान केंद्रित किया, किंतु पुनर्वास और आजीविका पुनर्स्थापन के मुद्दे अब भी गौण रहे (Government of Jharkhand, 2021)। 2021 की नीति में "Single Window Clearance" प्रणाली लागू की गई, जिससे भूमि आवंटन और पर्यावरण स्वीकृति प्रक्रियाएँ तेज़ हुईं, परंतु ग्रामसभा की सहभागिता और स्थानीय निर्णय प्रक्रिया और भी कमजोर हुई (Economic & Political Weekly, 2022)।

राजनीतिक दृष्टि से झारखण्ड में औद्योगिकरण का प्रश्न विकास बनाम अधिकार की प्रतिस्पर्धी भाषा में उलझा रहा है। भारतीय जनता पार्टी (BJP) की सरकारें सामान्यतः औद्योगिक निवेश, अवसंरचना और खनन विस्तार को "राज्य के आर्थिक उत्थान" का प्रतीक मानती रही हैं, जबकि झारखण्ड मुक्ति मोर्चा (JMM) ने इसे "संसाधनों पर स्थानीय स्वामित्व" और "आदिवासी अधिकारों" के दृष्टिकोण से देखा है (Kujur, 2018)। तथापि, व्यवहार में जब JMM या गठबंधन सरकारें सत्ता में रहीं, तब भी खनन परियोजनाओं के लिए भूमि अधिग्रहण जारी रहा, यह दर्शाता है कि विकास की संरचनात्मक दिशा पर आदिवासी नेतृत्व का प्रभाव सीमित रहा है (Ekka, 2019)।

राजनीतिक अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से देखें तो औद्योगिक विस्थापन राज्य, पूँजी और स्थानीय समाज के बीच शक्ति-संबंधों की असमानता का परिणाम है। भूमि एक "राजनीतिक पूँजी" में बदल गई है, जहाँ भूमि अधिग्रहण के माध्यम से राज्य न केवल आर्थिक संसाधन बल्कि राजनीतिक नियंत्रण भी स्थापित करता है (Levien, 2013)। इस ढाँचे में आदिवासी समुदाय दोहरे हाशिये पर हैं। वे भूमि और शासन दोनों स्तरों पर प्रतिनिधित्व से वंचित रहते हैं।

सांख्यिकीय रूप से देखें तो 2000 से 2020 के बीच झारखण्ड में 2.3 लाख से अधिक लोग औद्योगिक और खनन परियोजनाओं के कारण विस्थापित हुए, जिनमें 70 प्रतिशत से अधिक आदिवासी समुदायों से हैं (Planning Commission Report, 2014, updated from Sabrang India, 2023)। यह आँकड़ा केवल भौतिक विस्थापन का नहीं, बल्कि सामाजिक असमानता के पुनरुत्पादन का प्रतीक है। औद्योगिक विकास की मौजूदा संरचना में लाभ मुख्यतः कॉर्पोरेट और राज्य-नियंत्रित संस्थाओं को मिलता है, जबकि स्थानीय समाज इसके पर्यावरणीय और सांस्कृतिक नुकसान झेलता है।

इस प्रकार, झारखण्ड में औद्योगिक विस्थापन का राजनीतिक अर्थशास्त्र एक गहरे अंतर्विरोध को उजागर करता है, जहाँ विकास नीति लोकतांत्रिक सिद्धांतों से आगे निकल जाती है, और "विकास न्याय" का विचार बार-बार राजनीतिक नीतियों के हाशिए पर चला जाता है।

आदिवासी राजनीति और प्रतिरोध: जल-जंगल-जमीन से विकास न्याय तक

- **सांस्कृतिक-अस्तित्व और प्रतिरोध की जड़ें**

झारखण्ड में आदिवासी समुदायों की सामाजिक संरचना प्रकृति-केंद्रित है यहां भूमि केवल आर्थिक संसाधन नहीं बल्कि "जीवित इकाई" (living entity) मानी जाती है जो उनके सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक अस्तित्व का केंद्र है। भूमि पर कब्जा, चाहे वह राज्य के नाम पर हो या निजी उद्योगों के लिए, सामूहिक अस्तित्व पर आघात के रूप में देखा जाता है (Xaxa, 2008)। औद्योगिकीकरण के साथ जब इन समुदायों की भूमि धीरे-धीरे अधिग्रहित होने

लगी, तो इसने एक गहरे सामाजिक असंतुलन को जन्म दिया। विस्थापन केवल आजीविका का नहीं, बल्कि "पहचान और स्मृति के विस्थापन" का प्रश्न बन गया।

झारखण्ड में जब-जब खनन या औद्योगिक परियोजनाएँ बढ़ीं, तब-तब "विकास" की अवधारणा पर स्थानीय दृष्टि से सवाल उठे। कई आदिवासी नेताओं और संगठनों ने यह स्पष्ट किया कि उनके लिए विकास का अर्थ केवल भौतिक उन्नति नहीं बल्कि सम्मानजनक अस्तित्व है, यह विचार 1980-90 के झारखण्ड आंदोलन में मुख्य राजनीतिक स्वर के रूप में उभरा (Sundar, 2019)।

- **आंदोलन और क्षेत्रीय केस-स्टडी: कोल्हान, संथाल, सारंडा**

कोल्हान क्षेत्र (पश्चिमी सिंहभूम) में लौह अयस्क खनन के विस्तार के खिलाफ 2000 के बाद कई स्थानीय आंदोलनों का उदय हुआ। चिरिया, गुआ और मेघाताबुरू खदानों में भूमि अधिग्रहण और पर्यावरणीय क्षरण को लेकर ग्राम सभाओं ने तीव्र विरोध किया। यहाँ के कोल्हान प्रोटेक्टेड एरिया नियम (1903) के तहत भूमि ट्रांसफर पर प्रतिबंध होने के बावजूद, खनन कंपनियों ने राज्य सरकार के माध्यम से लीज़ का विस्तार कराया, जिससे व्यापक असंतोष फैला (Bandi, 2019)।

संथाल परगना में आंदोलन का चरित्र अधिक राजनीतिक रहा। यहां 1855 के संथाल विद्रोह की ऐतिहासिक स्मृति आज भी सामूहिक चेतना का हिस्सा है। 2008–2016 के दौरान पाकुड़ और गोड्डा जिलों में कोयला खदान और पावर प्रोजेक्ट के विरोध में आदिवासी महिला संगठनों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने ग्राम सभा और पारंपरिक Manjhi Pargana प्रणाली के माध्यम से निर्णय लिया कि वे किसी भी बाहरी अधिग्रहण को स्वीकार नहीं करेंगे (Anand, 2016)।

सारंडा वन क्षेत्र, जो एशिया के सबसे समृद्ध साल वनों में से है, वहाँ लौह अयस्क खनन के विरोध ने पर्यावरणीय न्याय को राजनीतिक विमर्श का केंद्र बनाया। नंदिनी और किरीबुरू जैसी परियोजनाओं के खिलाफ स्थानीय ग्राम सभाओं ने न केवल प्रदर्शन किए बल्कि Forest Rights Act, 2006 के तहत दावा दायर कर खनन रोकने की मांग भी की। 2018 में कई परियोजनाएँ रोक दी गईं जब यह पाया गया कि ग्राम सभाओं की सहमति औपचारिक रूप से नहीं ली गई थी (Down to Earth, 2018)।

इन तीनों क्षेत्रों के आंदोलनों में समानता यह है कि स्थानीय समुदायों ने राज्य और पूंजी दोनों के खिलाफ विकास-न्याय की समान भाषा अपनाई जो सांस्कृतिक अस्तित्व, पर्यावरणीय संरक्षण और राजनीतिक अधिकार को एक साथ जोड़ती है।

- **कानूनी ढाँचा, ग्राम सभा और PESA का प्रयोग**

कानूनी दृष्टि से PESA Act (1996) और Forest Rights Act (2006) आदिवासी स्वशासन की रीढ़ माने जाते हैं। ये कानून ग्राम सभा को भूमि उपयोग और संसाधन प्रबंधन पर प्राथमिक निर्णय-सत्ता देते हैं। परन्तु झारखण्ड में

औद्योगिक नीति (2001, 2016, 2021) के तहत भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया अक्सर ग्राम सभा की अनुमति के बिना आगे बढ़ाई गई।

इसके बावजूद कई जगह ग्राम सभाओं ने सक्रिय प्रतिरोध दिखाया। उदाहरण के तौर पर नंदिनी खदान (सारंडा) की ग्राम सभा ने PESA के तहत खनन अनुमति को अस्वीकार करते हुए कहा कि "यह भूमि हमारे देवस्थान और जल-स्रोत से जुड़ी है, इसलिए यह व्यावसायिक प्रयोजन के लिए नहीं दी जा सकती।" (Bandi, 2019)। इसी तरह 2017 में पथलगड़ी आंदोलन ने संविधान की पाँचवीं अनुसूची और अनुच्छेद 243(B) के तहत स्थानीय स्वशासन के अधिकार को प्रतीकात्मक रूप से पुनर्परिभाषित किया। हालांकि इसे बाद में राज्य ने 'कानून-व्यवस्था की समस्या' कहा, लेकिन इसने औद्योगिक नीति के औचित्य पर तीखा सामाजिक विमर्श खड़ा किया (Raj, 2018)।

- **सैद्धांतिक व राजनीतिक अर्थ: Subaltern और Political Ecology का दृष्टिकोण**

आदिवासी प्रतिरोध को केवल संघर्ष या हिंसा की प्रतिक्रिया के रूप में देखना अधूरा होगा। Subaltern Studies के विद्वान जैसे रणजीत गुहा और पार्थ चटर्जी यह तर्क देते हैं कि ऐसे प्रतिरोध "आधुनिक विकास परियोजनाओं के भीतर वैकल्पिक नैतिकता" को प्रस्तुत करते हैं (Chatterjee, 2004)। झारखण्ड के आदिवासी प्रतिरोध में यह नैतिकता स्पष्ट है यह विकास की गति नहीं बल्कि उसकी दिशा पर सवाल उठाता है।

Political Ecology का दृष्टिकोण बताता है कि संसाधन संघर्ष मूलतः सत्ता, अधिकार और वितरण के सवाल से जुड़ा है (Blaikie & Brookfield, 1987) । झारखण्ड के आंदोलन दिखाते हैं कि किस प्रकार "पर्यावरण" और "विकास" के बीच संघर्ष वास्तव में राज्य-सत्ता और सामुदायिक न्याय के बीच संघर्ष है।

इस प्रकार, झारखण्ड की आदिवासी राजनीति "जल-जंगल-जमीन" के रूप में उस विकास-न्याय का प्रतीक बन गई है जो केवल आर्थिक लाभ के बजाय सांस्कृतिक अस्तित्व और पारिस्थितिक संतुलन को केंद्र में रखती है। यह प्रतिरोध एक ऐसे नए विकास विमर्श को जन्म दे रहा है जिसमें न्याय, सहमति और स्थायित्व को बराबरी से महत्व दिया गया है (Ekka, 2019)।

विकास न्याय की अवधारणा और झारखण्ड में उसका पुनर्परिभाषण

"विकास न्याय" (Development Justice) की अवधारणा 2013 में Development Alternatives with Women for a New Era (DAWN) नेटवर्क द्वारा एक ऐसे वैकल्पिक वैश्विक ढाँचे के रूप में प्रस्तुत की गई थी, जो आर्थिक वृद्धि के बजाय मानव गरिमा, समानता और पारिस्थितिक संतुलन पर केंद्रित है (DAWN, 2013)। यह पाँच मुख्य धाराओं पर आधारित है, Redistributive, Economic, Social, Environmental, और Accountability Justice। इन पाँचों के परिप्रेक्ष्य में झारखण्ड का अनुभव यह दिखाता है कि राज्य का विकास मॉडल न केवल असंतुलित है, बल्कि उसने "न्याय" के उस मूल भाव को भी सीमित कर दिया है जो सामाजिक और पर्यावरणीय अधिकारों से जुड़ा होना चाहिए।

- **Redistributive Justice: लाभ का असमान वितरण**

झारखण्ड भारत के कुल खनिज भंडार का लगभग 40 प्रतिशत हिस्सा रखता है, लेकिन इसकी राजस्व आय और स्थानीय जीवन स्तर के बीच गहरी विषमता बनी हुई है (Jharkhand Economic Survey, 2023)। खनन और औद्योगिक परियोजनाओं से होने वाला राजस्व राज्य कोष और कंपनियों तक सीमित रहता है, जबकि स्थानीय समुदायों को न तो उचित मुआवजा मिलता है और न ही लाभांश में हिस्सेदारी। खनिज संपन्न जिलों जैसे पश्चिमी सिंहभूम, दुमका और गोड्डा में गरीबी दर अभी भी 35-40 प्रतिशत के बीच है (NITI Aayog, 2022)। यह असमान वितरण "विकास" को कुछ हितधारकों तक सीमित कर देता है और Redistributive Justice की भावना को निष्प्रभावी करता है।

- **Social Justice: पुनर्वास की औपचारिकता**

विस्थापन और पुनर्वास नीतियाँ झारखण्ड में अक्सर औपचारिकता तक सीमित रही हैं। Jharkhand Rehabilitation and Resettlement Policy (2010) में "livelihood restoration" और "skill training" जैसे प्रावधानों के बावजूद अधिकांश विस्थापित परिवार स्थायी रोजगार या शिक्षा-सुविधा प्राप्त नहीं कर सके (Pradhan, 2019)। कई क्षेत्रों में विस्थापितों को केवल नगद मुआवजा दिया गया, जिससे सामाजिक संरचना और सामुदायिक संबंध टूट गए। आदिवासी समाज, जो सामूहिक स्वामित्व पर आधारित है, वह व्यक्तिगत मुआवजा तंत्र के भीतर अपनी सामाजिक सुरक्षा खो देता है। इसीलिए झारखण्ड में सामाजिक न्याय केवल नीति-दस्तावेज का हिस्सा बनकर रह गया है, व्यवहार में नहीं।

- **Environmental Justice: पारिस्थितिक क्षरण और जीवन-संकट**

खनन और औद्योगिक गतिविधियों के कारण झारखण्ड के कई क्षेत्रों में भूमि, जल और वायु प्रदूषण गंभीर हो चुका है। 2022 में केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की रिपोर्ट के अनुसार, झारखण्ड के पाँच औद्योगिक क्लस्टर "critically polluted" श्रेणी में हैं (CPCB, 2022)। चिरिया, किरीबुरू और धनबाद क्षेत्र में भूजल स्तर में गिरावट और मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट दर्ज की गई है। इससे न केवल कृषि पर बल्कि स्थानीय स्वास्थ्य पर भी गंभीर प्रभाव पड़ा है। आदिवासी समाज के लिए यह केवल पर्यावरणीय संकट नहीं बल्कि जीविकोपार्जन और सांस्कृतिक अस्तित्व का संकट है (Sahu, 2020)।

- **Accountability Justice: निर्णय प्रक्रिया में स्थानीय भागीदारी का अभाव**

PESA (1996) और Forest Rights Act (2006) के बावजूद ग्राम सभाओं की सहमति को अक्सर नज़रअंदाज़ किया जाता है। कई मामलों में परियोजनाओं की मंज़ूरी कागज़ी "public hearing" के आधार पर दी गई (Kujur, 2021)। इस प्रकार निर्णय प्रक्रिया में लोकतांत्रिक जवाबदेही (accountability) का अभाव बना रहता है। विकास योजनाओं में जिन समुदायों का जीवन सबसे अधिक प्रभावित होता है, वे निर्णय के केंद्र से सबसे अधिक बाहर हैं। झारखण्ड का अनुभव दिखाता है कि जब तक विकास के ढाँचे में participatory consent नहीं जुड़ा जाएगा, तब तक Accountability Justice केवल घोषणापत्र की भाषा बनी रहेगी।

- **आदिवासी राजनीति द्वारा विकास-न्याय का पुनर्परिभाषण**

झारखण्ड की आदिवासी राजनीति इस असंतुलित मॉडल को चुनौती देती है। "जल-जंगल-जमीन" का रूपक केवल प्रतिरोध का प्रतीक नहीं, बल्कि एक वैकल्पिक विकास-दर्शन है, जो अधिकारों, सहमति और पारिस्थितिक संतुलन पर आधारित है। इस दृष्टिकोण में "विकास" का अर्थ growth without displacement है, और "न्याय" का अर्थ consent with dignity। स्थानीय आंदोलनों ने यह स्पष्ट किया कि विकास तभी वैध है जब वह redistribution, representation और recognition, इन तीनों को एक साथ सुनिश्चित करे (Fraser, 2008)। इस प्रकार, झारखण्ड की आदिवासी राजनीति "Development Justice" को केवल एक नीति नहीं बल्कि लोकतांत्रिक नैतिकता के रूप में पुनर्परिभाषित कर रही है, जहाँ participation is the new paradigm of justice.

नीतिगत पुनर्संरचना और आगे की दिशा

झारखण्ड में औद्योगिकरण और आदिवासी अधिकारों के बीच लंबे समय से चला आ रहा तनाव यह संकेत देता है कि केवल आर्थिक वृद्धि पर्याप्त नहीं है न्याय, सहमति और सहभागिता को समान रूप से प्राथमिकता देना अनिवार्य है। इसके लिए एक बहुस्तरीय नीतिगत पुनर्संरचना की आवश्यकता है, जिसमें विकास योजनाएँ स्थानीय स्वायत्तता और पारिस्थितिक स्थायित्व से जुड़ी हों।

- **भूमि अधिग्रहण और पुनर्वास में सामुदायिक सहमति का संस्थानीकरण**

भविष्य की भूमि अधिग्रहण नीति को "Free, Prior and Informed Consent" (FPIC) के सिद्धांत पर आधारित होना चाहिए, जैसा कि अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के ILO Convention 169 (1989) में मान्यता प्राप्त है। ग्राम सभा की सहमति को केवल औपचारिक प्रक्रिया नहीं बल्कि विधिक बाध्यता बनाया जाए, ताकि अधिग्रहण के निर्णय

सामुदायिक हितों के अनुरूप हों। साथ ही, पुनर्वास नीति को "Right to Return and Reclaim" के अधिकार से जोड़ा जाना चाहिए, जिससे विस्थापित परिवार पुनः अपने सांस्कृतिक-भौगोलिक क्षेत्र से जुड़ सकें (Ekka, 2020)।

- **CSR का पुनर्मूल्यांकन: स्थानीय अर्थव्यवस्था के साथ जोड़ना**

कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (CSR) को अब केवल स्कूल या स्वास्थ्य शिविरों तक सीमित रखने के बजाय स्थानीय आजीविका सशक्तिकरण, लघु वनोपज, हस्तशिल्प, और कृषि-आधारित वैकल्पिक उद्योगों से जोड़ा जाना चाहिए। इससे न केवल रोजगार सृजन होगा बल्कि पारंपरिक अर्थव्यवस्था को भी पुनर्जीवित किया जा सकेगा (Planning & Development Dept., Jharkhand, 2023)।

- **ग्राम सभा आधारित सामाजिक प्रभाव मूल्यांकन**

हर औद्योगिक परियोजना के लिए ग्राम सभा-आधारित Social Impact Assessment (SIA) अनिवार्य किया जाना चाहिए। इससे परियोजनाओं की पारदर्शिता बढ़ेगी और यह स्पष्ट होगा कि विकास का सामाजिक व पर्यावरणीय लाभ किसे मिल रहा है। स्थानीय नागरिक संगठनों को इस प्रक्रिया में भागीदार बनाना accountability justice को सशक्त करेगा (Kujur, 2021)।

- **ग्रीन औद्योगीकरण और लघु उद्योग मॉडल**

राज्य को "ग्रीन औद्योगीकरण" की दिशा में कदम बढ़ाने की आवश्यकता है जिसमें स्थानीय संसाधनों पर आधारित पर्यावरण-मित्र लघु उद्योग, नवीकरणीय ऊर्जा और जैविक उत्पादन केंद्र स्थापित हों। इससे खनिज-निर्भर अर्थव्यवस्था से विविधीकरण होगा और पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखा जा सकेगा (UNDP, 2022)।

इस प्रकार, झारखण्ड के लिए भविष्य का रास्ता "विकास" और "न्याय" के बीच चुनाव नहीं, बल्कि दोनों के सहअस्तित्व की नीतिगत पुनर्कल्पना है जहाँ राज्य, उद्योग और समुदाय, तीनों की भागीदारी समान रूप से सुनिश्चित हो।

निष्कर्ष

झारखण्ड का औद्योगिक अनुभव यह स्पष्ट करता है कि बिना विकास न्याय (Development Justice) के औद्योगिकीकरण अंततः सामाजिक असमानता और असंतुलन को गहरा करता है। बीते दो दशकों में राज्य में पूंजी-प्रधान परियोजनाओं ने आर्थिक वृद्धि के आंकड़े तो बढ़ाए, लेकिन इसके समानांतर विस्थापन, सांस्कृतिक विघटन और आजीविका संकट ने स्थानीय समुदायों, विशेषतः आदिवासियों, को असुरक्षा के चक्र में डाल दिया। यह अनुभव

हमें याद दिलाता है कि "विकास" केवल निवेश या GDP वृद्धि से नहीं, बल्कि मानवीय गरिमा, भागीदारी और अधिकारों की सुरक्षा से परिभाषित होना चाहिए।

आदिवासी राजनीति ने इस विमर्श को एक नई दिशा दी है। "जल, जंगल, जमीन" का प्रश्न अब केवल संसाधन नियंत्रण का नहीं, बल्कि अस्तित्व और पहचान के अधिकार का प्रतीक बन गया है। इसने यह चुनौती दी है कि राज्य नीतियाँ केवल आर्थिक दक्षता पर नहीं, बल्कि न्यायसंगत पुनर्वितरण और सांस्कृतिक निरंतरता पर आधारित हों।

इस परिप्रेक्ष्य में, राज्य की भूमिका अब केवल संसाधन प्रदाता या निवेश सुविधा देने वाले तंत्र तक सीमित नहीं रह सकती। उसे न्याय-संरक्षक (Justice-Protector) की भूमिका निभानी होगी, जहाँ विकास नीतियाँ सामुदायिक सहमति, पारदर्शिता, और सामाजिक उत्तरदायित्व से निर्देशित हों। झारखण्ड के औद्योगिक अनुभव से उभरता मूल संदेश यही है कि भविष्य का विकास तभी टिकाऊ और सर्वसमावेशी होगा जब वह लोगों के अधिकारों, पर्यावरणीय संतुलन और सांस्कृतिक स्वायत्तता के साथ संतुलन स्थापित करे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Anand, S. (2016). Women's resistance in Santhal Pargana. *Economic and Political Weekly, 51*(23).
2. Auty, R. (1993). *Sustaining development in mineral economies: The resource curse thesis.* Routledge.
3. Bandi, M. (2019). *Mining and the rights of Indigenous peoples in India.* Oxford University Press.
4. Blaikie, P., & Brookfield, H. (1987). *Land degradation and society.* Methuen.
5. Chatterjee, P. (2004). *The politics of the governed: Reflections on popular politics in most of the world.* Columbia University Press.
6. Central Pollution Control Board (CPCB). (2022). *Environmental status report 2022.* Government of India.
7. DAWN. (2013). *Development justice framework.* Development Alternatives with Women for a New Era (DAWN).
8. Deogharia, M. (2011). *Displacement, mining and resistance in Jharkhand.* Ranchi University Press.
9. Down to Earth. (2018). Sarbanda mines face suspension over Gram Sabha violations. *Down to Earth Magazine.*https://www.downtoearth.org.in
10. Down to Earth. (2021). *Jharkhand mining and land conflicts: An overview. Down to Earth Magazine.*https://www.downtoearth.org.in
11. Economic & Political Weekly. (2022). *Industrialization and displacement in India's mineral states. EPW, 57*(14).
12. Ekka, A. (2019). Development justice and tribal rights in Jharkhand. *Jharkhand Journal of Development Studies, 17*(2).
13. Ekka, A. (2020). Rehabilitation, consent and community rights in Jharkhand. *Journal of Development Alternatives, 18*(2).

14. Fernandes, W. (2006). Displacement and rehabilitation in India: The state of the art review. *Economic and Political Weekly, 41*(31), 3436–3449.
15. Fernandes, W. (2007). Singur and the displacement scenario. *Economic and Political Weekly, 42*(3), 203–206.*
16. Fernandes, W., & Paranjpye, V. (1997). *Rehabilitation policy and law in India: A right to livelihood.* Indian Social Institute.
17. Fraser, N. (2008). *Scales of justice: Reimagining political space in a globalizing world.* Polity Press.
18. Government of Jharkhand. (2016). *Jharkhand industrial policy 2016.* Department of Industries, Government of Jharkhand.
19. Government of Jharkhand. (2021). *Jharkhand industrial policy 2021.* Department of Industries, Government of Jharkhand.
20. Guha, R. (1982). *Subaltern studies I: Writings on South Asian history and society.* Oxford University Press.
21. Guha, R. (1999). *Elementary aspects of peasant insurgency in colonial India.* Duke University Press.
22. ILO. (1989). *Indigenous and Tribal Peoples Convention, No. 169.* International Labour Organization.
23. Jharkhand Economic Survey. (2023). *Jharkhand economic survey 2022–23.* Government of Jharkhand.
24. Jharkhand Industry Department. (2001). *Jharkhand industrial policy 2001.* Government of Jharkhand.
25. Kujur, J. M. (2003). Jharkhand: Politics of development and identity. *Indian Social Science Review, 5*(2), 125–146.
26. Kujur, J. (2018). Tribal movements and governance challenges in Jharkhand. *Indian Journal of Political Science, 79*(1), 33–48.
27. Kujur, J. (2021). Governance, consent and PESA in Jharkhand. *Journal of Tribal Governance, 7*(1), 45–62.
28. Levien, M. (2013). The politics of dispossession: Theorizing India's "land wars." *Politics & Society, 41*(3), 351–394.*
29. Ministry of Mines. (2023). *Annual report 2022–23.* Government of India.
30. Mukherjee, A. (2009). *Development, displacement and resistance in Eastern India.* Orient Blackswan.
31. Munda, R. (2000). *Adivasi identity and politics: Continuities and transformations.* Seagull Books.
32. NITI Aayog. (2022). *National multidimensional poverty index report.* Government of India.
33. O'Malley, L. S. S. (1910). *Bihar and Orissa District Gazetteers: Singhbhum, Ranchi, and Hazaribagh.* Government Press, Calcutta.
34. People's Democracy. (2025). Jharkhand: Displacement and people's resistance. *People's Democracy Online.*https://peoplesdemocracy.in
35. Planning & Development Department, Government of Jharkhand. (2023). *Annual development review 2022–23.*Government of Jharkhand.
36. Planning Commission. (2014). *Report on displacement and rehabilitation in India.* Government of India.
37. Pradhan, A. (2019). Rethinking rehabilitation in Jharkhand. *Economic and Political Weekly, 54*(28).
38. Raj, A. (2018). Pathalgadi and the politics of local sovereignty in Jharkhand. *South Asia Journal of Political Studies, 12*(1), 67–82.*

39. Roy, A. (2014). *Land, power and resistance: Industrial conflict in Jharkhand.* Sage Publications.
40. Sabrang India. (2023). Jharkhand tribals protest against mining projects. *Sabrang India.* https://sabrangindia.in
41. Sahu, R. (2020). Mining and environmental injustice in Jharkhand. *Indian Journal of Environmental Studies, 25*(3), 221–239.
42. Sen, A. (1999). *Development as freedom.* Oxford University Press.
43. Sengupta, N. (2007). *Development and deprivation in Jharkhand.* Concept Publishing.
44. Shah, A. (2010). *In the shadows of the state: Indigenous politics, environmentalism, and insurgency in Jharkhand, India.*Duke University Press.
45. Sundar, N. (2019). *The burning forest: India's war in Bastar.* Verso Books.
46. UNDP. (2022). *Green industrial transition and inclusive growth in India.* United Nations Development Programme.
47. Xaxa, V. (2008). *State, society and tribes: Issues in post-colonial India.* Pearson Education.